International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
Impact Factor- 3.866,
Volume 3, Issue 3, March 2016 ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)

ASSOCIATED ASIA RESEARCH FOUNDATION
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

"औपनिवेशिक भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रादुर्भाव : ताराचन्द के इतिहास लेखन का एक अध्ययन"

गीता देवी

शोधार्थी, इतिहास विभाग

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र ।

सन् 1947 में हुआ ब्रिटिश भारत का विभाजन विश्व इतिहास की सबसे विनाशकारी घटनाओं में से एक है और इस पर बहसों का कोई अंत नहीं है । प्रस्तुत शोध पेपर 'औपनिवेशिक भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रादुर्भाव: ताराचन्द के इतिहास लेखन का एक अध्ययन' में हमने ब्रिटिश कालीन भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास में ताराचन्द के इतिहास लेखन का अध्ययन किया है । ताराचन्द भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की शुरूआत 19वीं शताब्दी में सर सैयद अहमद खाँ द्वारा चलाए गए अलीगढ़ आन्दोलन से मानते हैं ।

ताराचन्द के इतिहास लेखन से यह थीसिस उभर कर आती है कि ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और राज करो' की नीति तथा मुस्लिम तत्व विशेषकर जिन्नाह के अडियल रूख के कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ । अर्थात् ताराचन्द भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिक आन्दोलन के लिए मुख्यत: ब्रिटिश राज एवं मुस्लिम नेतृत्व को उतरदायी मानते हैं तथा इस संदर्भ में वे कांग्रेस की भूमिका की भी आलोचना करते हैं । इसके अलावा वे 1906 में मुस्लिम की स्थापना को भी मुस्लिम साम्प्रदायिकता के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ मानते हैं । बाद में उनके अनुसार मोहम्मद अली जिन्हा के नेतृत्व में इस दल की राजनीति पूर्णत: साम्प्रदायिक अलगाववाद की ओर अग्रसर हो गई।

1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश घर्णा के विशेष लक्ष्य मुसलमान हुये थे । अधिकांश ब्रिटिशों का मानना था कि मुसलमानों ने उन्हें उखाड़-फैंकने के लिए 1857 के विद्रोह को भड़काया था । इस सम्बन्ध में ताराचन्द लिखते हैं :

> **“1857 के विद्रोह के बाद मुसलमानों पर अंग्रेज इस प्रकार टूट पड़े मानो वे उनके असली शत्रु और अत्यन्त भयंकर प्रतिद्वंद्वी हो । विद्रोह की विफलता हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों के लिए विपत्तिजनक थी । उन पर विदेशी शासकों का विश्वास उठ गया और फौजी तथा गैर फौजी सेवाओं में उनकी संख्या घट गई ।**[1]

सर सैयद अहमद खाँ जिन्होंने 1857 की क्रान्ति और दमन को अपनी आंखों से देखा था, उन्होंने अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करने के प्रयत्नों की व्यर्थता देख ली थी । उन्होंने मुस्लिम समाज में ब्रिटिश राज के प्रति निष्ठा पैदा करके सहयोग के भाव उत्पन्न करने के विषय में सोचा । सैयद अहमद खाँ ने 1864 में ‘साँईटिफिक सोसायटी’ की स्थापना की जिसके माध्यम से उन्होंने ब्रिटिश राज के लाभों को बताया । 1874 में उन्होंने ‘अलीगढ़ मोहम्डन एंग्लों ओरियण्टल स्कूल’ की स्थापना की 1878 में इसे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की तर्ज पर कॉलेज बना दिया गया ।[2] ताराचन्द के अनुसार

> **“1871 में डब्ल्यू-डब्ल्यू हण्टर ने ‘इण्डियन मुसलमान’ नामक पुस्तक लिखी जिसमें मुसलमानों की समस्याओं की ओर ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया। डब्ल्यू-डब्ल्यू हण्टर ने सैयद अहमद के आमंत्रण पर अलीगढ़ में बैठक की । जिसमें मुसलमानों की मांगों को पुनः उठाया गया इन मांगों का अल्फ्रेड लायल, ऑकलैण्ड और काल्विन ने भी समर्थन किया।”**[3]

सर सैयद अहमद खाँ ने 1883 में इल्बर्ट बिल विवाद पर हिंदुओं का समर्थन नहीं किया । परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमानों में मतभेद बढ़ने लगे थे । ताराचंद इस तथ्य को

---

1. ***ताराचन्द भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास***, खण्ड-II, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1996, पृ० 328.
2. ***ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास,*** खण्ड-II, पृ० 333.
3. वही, पृ० 345.

रेखांकित करते हैं कि सैयद खां शुरू में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे । उन्होंने 27 जनवरी 1853 को पटना में एक व्याख्यान दिया था जिसको ताराचन्द उद्धरित करते है :

> **"हम दोनों भारत की हवा में सांस लेते हैं और गंगा जमुना का पवित्र जल पीते हैं । हम भारत की जमीन से अपनी भुख मिटाते हैं । हम एक साथ जीते व मरते हैं । भारत में रहने के कारण हम दोनों ने अपना रक्त और अपने शरीर का रंग बदल लिया है और एक हो गए हैं । मुसलमानों ने बहुत से हिन्दू तौर तरीके अपनाएँ तो हिन्दुओं ने भी कई मुस्लिम आचरण अपनाए । हम इतने घुलमिल गए कि हमनें एक नई भाषा उर्दू विकसित की जोकि न तो हिन्दुओं की है और न मुसलमानों की..... देश की तरक्की भलाई तथा हमारी एकता परस्पर सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर हैं ।"[4]**

19वीं शताब्दी में शुरू हुये धर्म सुधार आन्दोलनों से हिन्दु और मुसलमानों में ज्यादा मतभेद हो गए । इस सम्बन्ध में ताराचन्द लिखतें हैं :

> **"हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों में धार्मिक सुधार का आन्दोलन समान रूप से तगड़ा था । साम्प्रदायिकता को पनपने के लिए खुली और उपजाऊ भूमि मिली । परिणाम यह हुआ कि हिन्दू लोग राष्ट्रीयता और मुसलमान मुस्लिम राष्ट्रीयता का प्रतिपादन करने लगे और उसी पर बोलने लगे और इस प्रकार से दो राष्ट्र सिद्धान्त की नींव पड़ी । साम्प्रदायिक शक्तियों के शक्तिशाली खिंचाव के बावजूद 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीयता का पौधा बढ़ता चला गया ।"[5]**

अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने भी हिन्दू और मुसलमानों दोनों में साम्प्रदायिक ताकतों को हवा दी । इस सम्बन्ध में ताराचन्द लिखते हैं :

> **"चाहे हिन्दू उनके प्यारे हो या मुसलमान, उद्देश्य यह था कि सम्प्रदायों को अलग रखा जाए । और उन्हें दोनों पर शासन करने वाले तीसरे दल के विरुद्ध मिलकर कुछ करने न दिया जाए । इस प्रकार जब भारत में साम्प्रदायिक वैमनस्य होता था**

---

[4]. ***वही***, पृ० 301.

[5]. ***वही,*** पृ० 404.

© **Associated Asia Research Foundation (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

तो उस पर अंग्रेज शासक खुश होते थे और वे अपनी इच्छाकृत या अनिच्छाकृत नीतियों तथा कार्यों से सांप्रदायिक भावनाओं को हवा देते थे ।"[6]

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद ब्रिटिश शासकों को रूढ़िवादी मुसलमानों की इसलिए आवश्यकता पड़ी ताकि वे उन्हें कांग्रेस के विरुद्ध खड़ा कर सके । कांग्रेस को वे एक राजद्रोही संगठन के रूप में देख रहे थे । इस संदर्भ में ताराचन्द तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन को इंगित करते हुये लिखते हैं :

"आप उन्हीं लोगों के वंशज है जो भारत के शासक थे, इसलिए आप शासन करने वालों की जिम्मेदारी बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं ।"[7]

1905 में ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल का विभाजन कर दिया गया । इस काल के दौरान हिन्दुओं और मुसलमानों के नाजुक रिस्तों में और भी खट्टास आने लगी । इसी समय मुस्लिम राजनीतिक आन्दोलन दो हिस्सों में बंट गया । एक तरफ उत्तर भारत के मुसलमान थें जिनमें से अधिकांश अलीगढ़ आन्दोलन तथा सैयद अहमद खाँ के विचारों से प्रभावित थे दूसरे तरफ राष्ट्रीय मुसलमान थे जो कांग्रेस के नेतृत्व में संघर्ष करना चाहते थे । किन्तु बंगाल के साम्प्रदायिक विभाजन के बाद अलगाववादी गुट का पलड़ा भारी था । बंग-भंग के विरुद्ध चले स्वदेशी आन्दोलन में अधिकांश मुसलमानों ने भाग नहीं लिया इस संदर्भ में ताराचंद लिखते हैं:

"हिन्दू और मुस्लिम पृथक्ता और तीव्र हो गईं । मुस्लिम आबादी पूरी तरह जागृत हो गई और इतिहास में एक नया पन्ना जुड़ा जिसका असर न सिर्फ प्रान्त पर बल्कि सारे भारत पर पड़ने वाला था ।"[8]

1 अक्टुबर 1906 को आगा खाँ नेतृत्व में मुस्लिम शिष्टमण्डल शिमला में वायसराय लार्ड मिण्टों से मिला जिसमें मुसलमानों के विशिष्ट हितों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया तथा मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन मण्डल की स्थापना का आश्वास दिया गया। ताराचन्द लिखते हैं :

---

6. ***वही,*** पृ० 484.
7. ***वही,*** खण्ड-3, पृ० 206.
8. ***वही,*** खण्ड-3, पृ० 412.

© **Associated Asia Research Foundation (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

"ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू मुस्लिम एकता को खत्म करने की नीति अपना ली थी लार्ड मिण्टों ने इस नीति की नींव 1906 में डाल दी थी, जब उन्होंने मुस्लिम प्रतिनिधि मण्डल को आश्वासन दिया था ।"[9]

मुस्लिम साम्प्रदायिक आन्दोलन के इतिहास में अगला पड़ाव मुस्लिम लीग की स्थापना को माना जाता है 30 दिसम्बर 1906 को जब ढ़ाका में मोहम्मडन एजुकेशन कान्फ्रैंस की बैठक बुलाई गईं और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई । ताराचन्द लिखते हैं: **"ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिकता के धोखेबाज ट्रोजन घोड़े धीरे-धीरे प्रवेश करवाए ।"**[10]

मुस्लिम लीग की मांगों के आधार पर 1909 में मार्ले मिण्टों सुधारों के अन्तर्गत मुसलमानों के लिए सीटें आरक्षित कर दी उस समय वायसराय मिण्टों ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि "हिन्दुओं की नाराजगी पर भी मुसलमानों को खुश रखना चाहिए ।" ताराचन्द लिखतें हैं :

"मार्ले मिण्टों सुधारों से स्वयं मिण्टों और मार्ले भी आश्चर्यचकित थे, क्योंकि इनमें पृथक् तथा अनुपात से अधिक मुसलमानों को प्रतिनिधित्व दिया गया था जो स्थान उन्हें दिये गए थे, उतने योग्य मुसलमान मुस्लिम समाज में भी नहीं थें ।"[11]

1915 में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सम्बन्धों में काफी निकटता आने लगी थी । मोहम्मद अली जिन्नाह जो मुस्लिम राजनीति में इस समय तक काफी सक्रिय हो चुके थे, उन्हीं के प्रयासों से 1916 में मुस्लिम लीग और कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में एक ही स्थान पर हुआ । यहां हुयें लखनऊ समझौते के जरिये मुसलमानों की पृथक् निर्वाचन मण्डल की मांग को मान लिया गया। ताराचन्द के अनुसार :

"लखनऊ समझौता इस सिद्धान्त को झुठलाने वाला था कि हिन्दुओं और मुसलमानों में धार्मिक मतभेदों के कारण कभी भी किसी भी परिस्थिति में समझौता नहीं हो सकता। अब दोनों में कोई ऐसी असम्भव रूकावट नहीं थी, जिसे सहयोग की भावना, सहज बुद्धि और विवेक से काम लेकर हटाया न जा सकें ।"[12]

---

9. ***वही***, पृ० 419.
10. ***वही,*** पृ० 384.
11. ***वही,*** पृ० 390.
12. ***वही***, खण्ड-III, पृ० 435.

1919 से 1923 तक मुस्लिम लीग की एक राजनीतिक दल के रूप में स्वतन्त्र सता समाप्त हो गई । इस समय पूरा देश महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ा । किन्तु आन्दोलन वापस लिए जाने के कारण देश में राजनीतिक मतभेद फिर से उत्पन्न हो गए ।[13] 1924 में मुस्लिम लीग की बैठक लाहौर में जिन्हा की अध्यक्षता में हुई जिसमें उन्होंने कहा :

> **"हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वराज प्राप्त करने की एकमात्र आवश्यक शर्त हिन्दू-मुस्लिम राजनीतिक एकता है।"**[14]

सितम्बर 1930 में मुस्लिम लीग का अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ जिसकी अध्यक्षता मोहम्मद इकबाल ने की और इसमें उत्तर- पश्चिमी प्रदेश को भारतीय संघ में स्वायत प्रदेश बनाने की मांग की क्योंकि यहाँ मुसलमानों का बहुमत था ।

1935 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया जिसका भारत के अनेक वर्गों ने विरोध किया । मुस्लिम लीग ने अप्रैल 1936 में बंबई अधिवेशन में नये सुधारों की आलोचना करते हुए **'प्रान्तीय सुधारों'** को स्वीकार किया, जबकि केन्द्रीय सुधार योजना को अस्वीकार कर दिया । इस अधिवेशन में प्रस्ताव पास किया गया :

> **"लीग भारत के लिए पूर्ण उत्तरदायी सरकार चाहती है, 1935 के संविधान की निन्दा करती है और साम्प्रदायिक परिनिर्णय को स्वीकार करती है परंतु फैडरल प्रांतीय संविधान को अस्वीकार करती है ।"**[15]

1937 में भारत में प्रान्तीय चुनाव आरम्भ हो गए । इनमें मुस्लिम लीग ने समस्त सीटों पर उम्मीदवार खड़े कर दिये । मुस्लिम लीग को चुनावों में ठोस सफलता नहीं मिली । इन चुनावों में पाँच प्रान्तों में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला । पंजाब व बंगाल जैसे मुस्लिम बहुल प्रान्तों में क्षेत्रीय पार्टियों ने बहुमत हासिल किया । मुस्लिम लीग ने संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस के साथ सत्ता में भागीदारी करनी चाही, परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली । ताराचन्द लिखते हैं :

---

13. ***वही,*** पृ० 482.
14. वही, खण्ड-4, पृ० 148.
15. वही, पृ० 258-259.

© Associated Asia Research Foundation (AARF)

> **“इसके फलस्वरूप जो मुस्लिम लीग एक देश, एक राष्ट्र व एक राज्य की समर्थक थी, उसने मुस्लिम समुदाय को “उपराष्ट्र” मानना आरम्भ कर दिया । इसका आधार उन्होंने अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म, परम्परा और व्यक्तिगत कानून को माना ।”**[16]

ताराचन्द के अनुसार 1937 में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के नेता जिन्नाह का सहयोग खो दिया । उस समय लीग में जिन्नाह ही ऐसा नेता था जिससे सारे भारत के मुसलमान जानते थे । इस समय मुस्लिम लीग का अधिवेशन लखनऊ में हुआ । जिसकी अध्यक्षता मोहम्मद अली जिन्नाह ने की । उन्होनें अध्यक्षीय भाषण में आरोप लगाया कि वह **‘हिन्दूवादी नीति’** का पालन कर रही हैं । ताराचन्द का मानना है कि यहाँ से जिन्हा के राजनीतिक जीवन में दूसरे अध्याय का आरम्भ हुआ । उसने कांग्रेस से लीग का सम्बन्ध तोड़ लिया और ‘अखण्ड भारत’ के विचार का परित्याग कर दिया। ताराचन्द लिखते हैं:

> **“जिन्नाह ने लखनऊ के भाषण में सैनिकों को तैयार किया, जबकि पटना के प्रस्ताव में युद्ध का बिगुल बजा दिया । यह युद्ध भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं था, बल्कि कांग्रेस के विरुद्ध था ।”**[17]

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया । इस समय ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस से सहयोग की मांग की किन्तु कांग्रेस ने सहयोग देने से इंकार कर दिया । जिन्हा ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया और ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए युद्ध में शामिल होने का समर्थन किया । ब्रिटिश सरकार ने जिन्नाह को मुस्लिम समुदाय का मुख्य नेता मान लिया गया तथा मुस्लिम लीग को भी कांग्रेस के बराबर की पार्टी मान लिया गया । जिससे मुस्लिम लीग की महत्वकांक्षा काफी बढ़ गई ।[18] 24 मार्च 1940 में लाहौर में मुस्लिम लीग का वार्षिक अधिवेशन हुआ । इसमें साम्प्रदायिकता के आधार पर भारत का विभाजन और ‘प्रभुसत्ता सम्पन्न मुस्लिम राष्ट्र की मांग रखी गई । इस सम्बन्ध में ताराचन्द लिखते हैं :

> **“पाकिस्तान का विचार कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के किसी मुसलमान अण्डरग्रेजवेट की उर्वर कल्पना का फल नहीं थी । न ही यह कवि इकबाल का विचार था । यह तो**

---

16. वही, पृ० 269.
17. वही, पृ० 308-310.
18. वही, पृ० 363.

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

अति संवेदनशील हिन्दू नेताओं के दिमाग की शृष्टि थी । ... जैसे हिन्दू नेता, काल्पनिक भूतों से डरते थे, वैसा ही हाल मुसलमानों का था ।"[19]

1942 में 'क्रिप्स मिशन' भारत की साम्प्रदायिक राजनैतिक गतिरोध की समस्या को सुलझाने के लिए भारत आया । जिसमें इस बात को बढ़ावा दिया गया कि यदि कोई प्रान्त प्रस्तावित संविधान को अस्वीकार करता है तो उसे स्वतन्त्र रहने का भी हक होगा । यह पाकिस्तान की मांग को बढ़ावा देने वाला कदम था । कांग्रेस को महत्वहीन करने के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने कहा था कि कांग्रेस सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करती । हिन्दुओं के अतिरिक्त ब्रिटिश भारत में 9 करोड़ मुसलमान 5 करोड़ अछूत भी है । ताराचन्द लिखते हैं :

"ब्रिटिश सरकार ने इस नीति को अपनाकर मुसलमानों के हितों को अधिक महत्त्व दिया था । चर्चिल चाहता तो मुसलमानों के हितों को और कांग्रेस के हितों को समाहित कर सकता था ।"[20]

8 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी द्वारा 'भारत छोड़ो आन्दोलन' चलाया गया जिसमें जिन्नाह ने मुसलमानों को इस आन्दोलन में शामिल न होने का आह्वान किया । जिसके फलस्वरूप इस आन्दोलन में मुसलमानों ने बहुत कम भाग लिया । ताराचन्द के शब्दों में :

"जिन्नाह ने मुस्लिम लीग की सता अब तक अपने हाथों में केन्द्रित कर ली थी । पार्टी की समिति इन्हीं के द्वारा बनाई गई थी । इस समय जिन्नाह तानाशाह बन चुके थे । मुस्लिम जनता उन्हें मानती थी और शिक्षित समाज विशेषकर विद्यार्थी, उसकी पूजा करते थे । जिनके हाथ में शक्ति थी, वे उससे डरते थे ।"[21]

जिन्नाह और सी० राजगोपालाचार्य के मध्य समझौते का एक ओर प्रयास हुआ । किन्तु जिन्नाह पाकिस्तान की मांग के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं चाहते थे । अगस्त 1946 में जिन्नाह ने **'प्रत्यक्ष कार्यवाही'** की राजनीति अपना ली जिसमें नारा दिया गया 'लड़कर लेंगें पाकिस्तान' परिणाम-स्वरूप भयंकर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे भड़के । 1946 में चुनाव हुयें,

---

19. वही, पृ० 126.
20. वही, पृ० 447.
21. वही, पृ० 475-476.

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

जिसमें मुस्लिम लीग ने 90 प्रतिशत पृथक् निर्वाचन मण्डल हासिल कर लिए तथा भारत की स्वतंत्रता के साथ भारत के मानचित्र पर पाकिस्तान का निर्माण हो गया ।

इस तरह कहा जा सकता है कि ताराचन्द भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की शुरूआत 19वीं शताब्दी विशेषकर 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार की 'फूट डाला और राज करो' की नीति तथा मुस्लिम नेतृत्व को उत्तरदायी मानते है । तथा इस सन्दर्भ में वे कांग्रेस की भूमिका की भी आलोचना करते हैं । बाद में उनके अनुसार जिन्नाह के नेतृत्व में 1937 के चुनाव के बाद इस दल की राजनीति पूर्णत अलगाववाद की ओर अग्रसर हो गई ।